उ.प्र. पं. दीनदयाल उपाध्याय पशु चिकित्सा विज्ञान विश्वविद्यालय एवम् गो अनुसंधान संस्थान, मथुरा-281001

अंक : त्रयोदश
संस्करण : प्रथम
(जनवरी 2019)

संरक्षक :
**प्रो. जी. के. सिंह**
कुलपति, दुवासू

प्रधान सम्पादक :
**डॉ. सर्वजीत यादव**
निदेशक प्रसार, दुवासू

सम्पादक गण :
डॉ. गुलशन कुमार
डॉ. अमित सिंह
डॉ. शंकर सिंह
डॉ. दीप नारायण सिंह
डॉ. रुचि तिवारी

प्रकाशक :
समन्वयक,
संचार केन्द्र,
उ.प्र. पं. दीनदयाल उपाध्याय पशु चिकित्सा विज्ञान विश्वविद्यालय एवम् गो अनुसंधान संस्थान, मथुरा
*deduvasu@gmail.com*

दुवासु प्रकाशन संख्या : 185

मुद्रण :
**यमुना सिंडिकेट**
मथुरा

## कुलपति का संदेश

प्रिय पशुपालक भाइयों,

सप्रेम नमस्कार

मुझे यह जानकर अत्यन्त हर्ष हुआ है कि उ.प्र. पं. दीनदयाल उपाध्याय पशु चिकित्सा विज्ञान विश्वविद्यालय एवम् गो अनुसंधान संस्थान, मथुरा द्वारा आप सभी के ज्ञानवर्धन हेतु पशुधन पत्रिका का प्रकाशन पिछले बारह वर्षों से निरन्तर किया जा रहा है। इसी क्रम में आगे बढ़ते हुये मैं पशुधन पत्रिका के त्रयोदश अंक प्रथम संस्करण के साथ आप सभी से रुबरु हो रहा हूँ। इस संस्करण में पशुपालकों व किसान भाइयों के लाभार्थ पशुपालन व कुक्कुट पालन के संवर्धन व प्रबन्धन से सम्बन्धित महत्वपूर्ण बातें बतायी गयी हैं।

कृषि एवम् पशुपालन से सम्बन्धित कार्यों से जुड़े हुये व्यक्तियों में कई बार जूनोसिस (पशुओं से मनुष्यों में होने वाले रोग) जैसे संक्रमण की सम्भावना होती है, इससे बचने हेतु रोकथाम के उपाय, जन्म के उपरान्त नवजात बछड़े व बछियों की देखभाल करने हेतु आवश्यक जानकारियाँ, दुधारू पशुओं से अच्छा उत्पादन लेने हेतु सन्तुलित आहार की महत्ता, आहार में दिये जाने वाले हरे चारे एवम् औषधि के रूप में सहजन की खेती से जुड़ी जानकारी आप सभी को इस अंक के माध्यम से प्राप्त होगी।

पशुओं के अत्यन्त महत्वपूर्ण रोग गलघोंटू पर भी प्रकाश डाला गया है। जेर के बाहर ना आने की परिस्थिति में प्रबन्धन व इससे बचने के उपाय के साथ-साथ आज कल अत्यन्त प्रचलित हो रही नवीन तकनीकों जैसे भ्रूण प्रत्यारोपण व वर्तमान में डेयरी उद्योग की आवश्यकता लिंग चयनित वीर्य से सम्बन्धित जानकारी उपलब्ध करायी जा रही हैं।

पशुधन पत्रिका का यह निरन्तर प्रयास है कि विभिन्न विषयोपयोगी व रुचिकर लेखों के माध्यम से किसान भाइयों व पशुपालकों के पशुओं के उत्पादन एवम् आय लाभ बढ़ाने में सहयोग किया जाये। अत: अपनी इस पत्रिका को अधिक ज्ञानपरक बनाने हेतु पशुपालकों, छात्रों, वैज्ञानिकों, कृषक भाइयों से अनुरोध है कि आप पत्रिका को पढ़ने के उपरान्त अपने सुझाव अवश्य भेजें।

शुभकामनाओं सहित ।

आपका अपना

(जी. के. सिंह)

## इस अंक में ...


सन्तुलित आहार का दुधारू पशुओं के पोषण में महत्व

भ्रूण प्रत्यारोपण : एक वरदान

नवजात बछड़े व बछियों की देखभाल कैसे करें

जेर का रूकना : प्रबन्धन और रोकथाम

कृषि एवम् पशुपालन से सम्बन्धित कार्यो से जुड़े व्यक्तियों में फैलने वाले प्राणिरूजा रोग (जूनोसिस) तथा उनकी रोकथाम


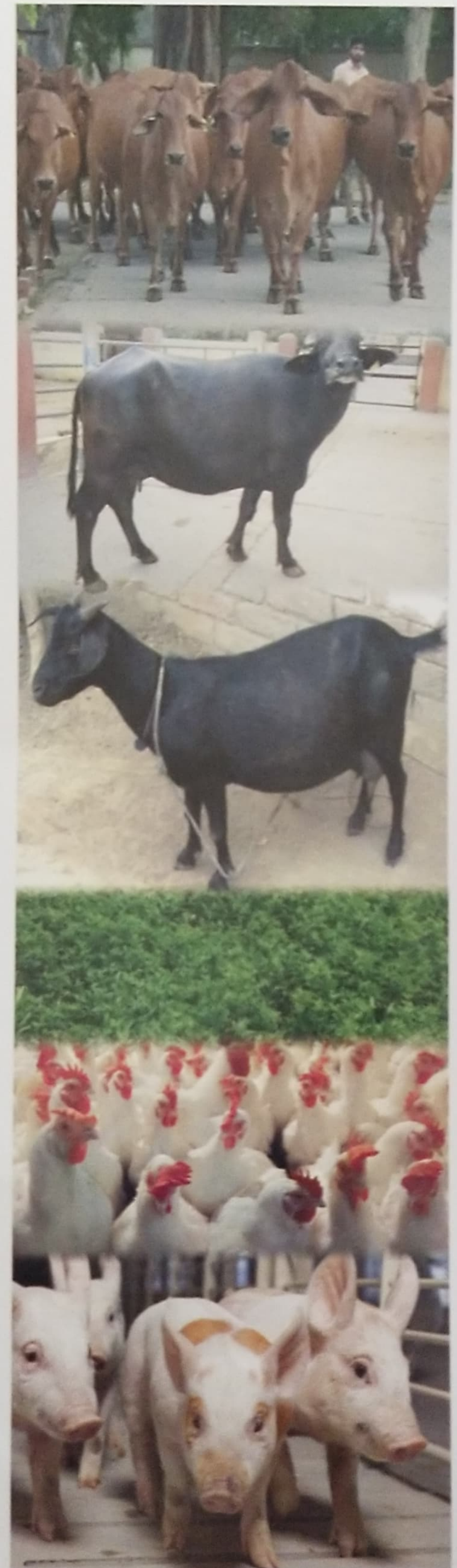


लिंग चयनित वीर्य : वर्तमान आवश्यकता

गलघोंटू या घरघरा या घुर्रका रोग

गोवंशी पशुओं में सींग का कैंसर

हरे चारे एवम् औषधि के रूप में सहजन की खेती

सूकर पालन : पशुपालकों के लिए लाभकारी व्यवस्था

# सन्तुलित आहार का दुधारू पशुओं के पोषण में महत्व

*- मुनीन्द्र कुमार, विनोद कुमार एवम् राजू कुशवाह*

पशुओं के स्वास्थ्य एवम् उनकी उत्पादकता के लिए सन्तुलित पोषण का बहुत महत्व है। दुधारू पशुओं की आहार व्यवस्था उचित विधि से की जानी चाहिए ताकि शरीर को सभी आवश्यक तत्व उचित मात्रा में मिल सकें। यह भी ध्यान रखना चाहिए कि आहार सस्ता व सन्तुलित हो। पशुओं के लिए आहार बनाने में उनके शारीरिक भार, उत्पादन क्षमता, कार्य, शारीरिक वृद्धि तथा गर्भ आदि अवस्थाओं का ध्यान रखना चाहिए। ऐसे आहार जिसमें सभी जरूरी पोषक तत्व पशु की शारीरिक अवस्था व उत्पादन क्षमता के अनुसार उपलब्ध हो सन्तुलित आहार कहलाते हैं। संतुलित पोषण सभी पशुओं में दुग्ध उत्पादन व प्रजनन क्षमता को प्रभावी बनाये रखने में प्रमुख भूमिका निभाता है। असन्तुलित पोषण पशुओं में कम दुग्ध उत्पादन व प्रजनन सम्बन्धी समस्याओं का कारण हो सकता है। पशुओं की समुचित वृद्धि, प्रजनन क्षमता को प्रभावी बनाये रखने एवम् अधिक उत्पादन हेतु आहार में विभिन्न पोषक तत्वों का सन्तुलित मात्रा में होना नितान्त आवश्यक है। पोषक तत्वों की कम या अधिक मात्रा वृद्धि एवम् उत्पादन व प्रजनन क्षमता पर प्रभाव डालती है एवम् आहार पर किया गया व्यय व्यर्थ चला जाता है। किन्तु विडम्बना यह है कि आम पशुपालक पशु आहार पर होने वाले व्यय को जानते हुये भी इस दिशा में महत्वपूर्ण पहल नहीं करते हैं। उचित दुग्ध उत्पादन व प्रजनन हेतु ऊर्जा व प्रोटीन प्राथमिक एवम् अतिमहत्वपूर्ण पोषक तत्व होते हैं। ऊर्जा व प्रोटीन के अतिरिक्त खनिज व विटामिन भी दुग्ध उत्पादन व उत्तम प्रजनन क्षमता हेतु आवश्यक है।

**ऊर्जा स्रोतों का महत्व**

सन्तुलित ऊर्जा का पशुओं के दुग्ध उत्पादन व प्रजनन में एक महत्वपूर्ण योगदान होता है। ऊर्जा के सीमित सेवन से पशुओं के दुग्ध उत्पादन में कमी व प्रजनन से सम्बन्धित विभिन्न प्रकार की समस्यायें जैसे कि गर्भधारण की दर में कमी, दीर्घ गर्भकाल तथा समय पर गर्मी में न आना इत्यादि हैं। सीमित ऊर्जा के अन्त: ग्रहण के अतिरिक्त अत्यधिक ऊर्जा का सेवन करने से भी पशुओं में प्रजनन सम्बन्धी समस्यायें उत्पन्न होती है। आवश्यकता से अधिक ऊर्जा के सेवन से शरीर में वसा का संचय होने की दर बढ़ जाती है जिससे पशुओं में समय से जेर का न गिरना, बच्चेदानी में संक्रमण होना, अण्डाशय में गाँठ का बनना इत्यादि समस्यायें होने की सम्भावना बनी रहती है। पशुओं में सन्तुलित ऊर्जा बनाये रखने हेतु उचित मात्रा में अनाजों व वसा का आहार में समावेश करना चाहिए। ऊर्जा पूरक खाद्य पदार्थों में दाने व अनाज जैसे कि गेहूँ, चावल, मक्का, जौ, बाजरा, ज्वार, जई आदि तथा प्रोटीन समवर्धित फीड में खलें, दालें, चुन्निया जैसे वनस्पति उत्पाद एवम् जैविक स्रोतों में मछली चूर्ण, रक्त चूर्ण, अस्थि चूर्ण आदि पाये जाते हैं।

**प्रोटीन स्रोतों का महत्व**

पशुओं के प्रजनन व दुग्ध उत्पादन में प्रोटीन भी एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। लम्बे समय तक अपर्याप्त मात्रा में प्रोटीन का सेवन दुग्ध उत्पादन में कमी व पशु प्रजनन से सम्बन्धित कई विकारों को जन्म देता है। अपर्याप्त प्रोटीन का सेवन वयस्क मादा की तुलना में प्रथम ब्याँत वाली मादाओं में अधिक प्रभाव डालता है। तेजी से बढ़ रहे बछियों के आहार में प्रोटीन की कमी से कई विकार जैसे कि मादा प्रजनन अंगों का कम विकसित होना, ब्याने के समय समस्यायें आना तथा ब्याने के बाद क्षमता से कम दुग्ध देना इत्यादि है। उपरोक्त समस्याओं से बचने के लिए पशु के आहार में उचित मात्रा में प्रोटीन युक्त घटक जैसे सोयाबीन, सरसों, मूँगफली व बिनौले आदि की खल का समावेश करना चाहिए।

**खनिज व विटामिन का महत्व**

खनिज व विटामिन पशुओं में प्रजनन सहित सभी प्रकार की शारीरिक प्रक्रियाओं के लिए महत्वपूर्ण है। पशु आहार में खनिज व विटामिन का असन्तुलन प्राय: प्रजनन में कमी के कारणों के रुप में उद्दत होता है। पशु आहार में कैल्शियम, फास्फोरस व विटामिन डी का असन्तुलन व उनका पारस्परिक प्रभाव प्रजनन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इन घटकों की कमी से समस्यायें जैसे दुग्ध उत्पादन में कमी, डिम्बाशय की गतिविधि में कमी व अनियमित रुप से गर्मी में आना इत्यादि है। इन घटकों के अतिरिक्त अन्य अल्प मात्रा में आवश्यक किन्तु अतिमहत्वपूर्ण तत्व जैसे कॉपर, जिंक, आयोडिन, मैंगनीज, कोवाल्ट, विटामिन ए व विटामिन ई इत्यादि भी पशुओं के प्रजनन में अतिमहत्वपूर्ण भूमिका निभाते है। इन तत्वों की कमी से प्रजनन में होने वाले अवांछित प्रभावों से बचने के लिये सन्तुलित खनिज मिश्रण को उचित मात्रा में पशु आहार में समावेशित करना चाहिए। सन्तुलित खनिज मिश्रण विश्वविद्यालय के पशु पोषण विभाग या बाजार से उचित मूल्य पर खरीदा जा सकता है।

**विभिन्न अवस्था के दुधारू पशुओं हेतु सन्तुलित आहार**

वयस्क एवम् दुधारू गौ पशुओं को मात्र भूसा या कड़बी खिलाकर उनसे दुग्ध उत्पादन प्राप्त नहीं किया जा सकता (इनके साथ दलहनी चारे या सान्द्र आहार देना अति-आवश्यक है। हरे चारे सस्ते एवम् पौष्टिक होने के कारण जहाँ तक संभव हो सके इन्हें पशुओं को खिलाने हेतु अधिकतम उपयोग में लेना चाहिये। जिन पशुपालकों के पास सिंचाई की सुविधा है उन्हें सुनिश्चित कर लेना चाहिये कि वे वर्ष भर अधिक से अधिक हरा चारा उगाकर गौ पशुओं को खिलाते रहेंगे इससे उन्हें न्यूनतम दर पर दुग्ध उत्पादन प्राप्त होता रहेगा। सामान्यत: पशुओं को उसके शारीरिक भार के 2-3 प्रतिशत के लगभग शुष्क पदार्थ देना चाहिए। उदाहरण के लिए 400 किग्रा भार वाली गाय के लिए 2.0-2.5/100 किग्रा शारीरिक भार (08-10 किग्रा) शुष्क पदार्थ की आवश्यकता होती है। भैंस के लिए

शारीरिक भार का 2.5-3.0 प्रतिशत शुष्क पदार्थ की आवश्यकता होती है। इस शुष्क पदार्थ का 2/3 भाग हमें मोटा चारा या रफेज से तथा 1/3 भाग दाने से पूरा करना चाहिए। मोटा चारे में हम 2/3 भाग भूसा तथा 1/3 भाग हरा चारा दे सकते है। सामान्यत: शुष्क गाय या भैंस में 1.5-2.0 किलो दाना तथा बाकि भूसा या हरा चारा देना चाहिए। सन्तोषजनक उत्पादन लेने के लिए दूधारू गाय को प्रति 3 किग्रा दूध के लिए 1 किग्रा दाना एवम् दूधारू भैंस को प्रति 2.5 किग्रा दूध के लिए 1 किग्रा अतिरिक्त दाना देना चाहिए। गाय-भैंस को गर्भकाल के अन्तिम तीन माह के मध्य 1-2 किग्रा अतिरिक्त दाना देना चाहिए। इस प्रकार आहार देने पर ही उनसे पूरा उत्पादन मिल सकता है। गाय व भैंस के लिए दाना बनाने हेतु 27 भाग अन्न, 30 भाग खली, 40 भाग चोकर, 2 भाग लवण मिश्रण तथा 1 भाग नमक मिलावें। गाय तथा भैंस के लिए औसत राशन की मात्रा निम्न है। इसके अतिरिक्त कैलशियम, फॉस्फोरस एवम् विटामिन डी को कैलशियम की गर्भकाल में आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए अवश्य ही चोकर में मिलाकर दिया जाना चाहिये।

पशुओं में आहार के अवयव एवम् मात्रा पशु की शारीरिक अवस्था व उत्पादन शीलता के अनुसार कम या अधिक होती रहती है। अत: सन्तुलित आहार देकर ही हमारे किसान भाई पशु के उत्पादकता का पूर्ण लाभ ले सकते हैं। पशुपालक चारों/दानों की उपलब्धता अनुसार निम्न प्रकार से वयस्क एवम् दुधारू गौ पशुओं का पोषण कर सकते हैं:

1. भूसा या कड़बी के साथ औसत 400 किग्रा वजन वाले पशु को परवरिश के लिये 1-1.5 किग्रा सान्द्र आहार प्रतिदिन देना चाहिये। गायों में प्रति 2.5-3 किग्रा दुग्ध उत्पादन के लिये 1 किग्रा सान्द्र आहार उपरोक्त के अलावा अलग से देना चाहिये। इस प्रकार एक गाय जो लगभग 10 किग्रा दूध प्रतिदिन देती है उसे भूसा या कड़बी के साथ लगभग 4-5 किग्रा सान्द्र आहार प्रतिदिन देना चाहिये।

2. सूखी घास (हे) में पोषक तत्वों की मात्रा भूसा या कड़बी की तुलना में अधिक होती है। केवल सूखी घास देने पर पशुओं की परवरिश हेतु आवश्यक पोषक तत्वों की आपूर्ति हो जाती है लेकिन दुग्ध उत्पादन हेतु उपरोक्तानुसार सान्द्र आहार की आवश्यकता होती है इस प्रकार सूखी घास के साथ 400 किग्रा वजन व 10 किग्रा दुग्ध उत्पादन देने वाली गाय को 4-5 किग्रा सान्द्र आहार प्रतिदिन देना चाहिये।

3. दलहनी हरे चारे उपलब्ध होने पर दुधारू पशुओं को सान्द्र आहार बिल्कुल नहीं अथवा बहुत ही कम मात्रा में देने की जरूरत होती है। भूसी या कड़बी के साथ परवरिश के लिये प्रतिदिन 8-10 किग्रा हरे दलहनी चारों की आवश्यकता होती है। ऐसी गायें जिनके करीब 5 किग्रा दुग्ध उत्पादन प्रतिदिन है उन्हें लगभग 25-30 किग्रा हरी बरसीम या ल्यूसर्न के साथ पर्याप्त मात्रा में भूसा या कड़बी खिलायी जा सकती है एवम् अलग से सान्द्र आहार की आवश्यकता नहीं होती। पर्याप्त मात्रा में सूखी घास उपलब्ध होने पर केवल दुग्ध उत्पादन हेतु हरी ल्यूसर्न या बरसीम पशुओं को खिलाना चाहिये।

वयस्क एवम् दुधारू गौ पशुओं को सान्द्र आहार की पूर्ति के लिये ऐसे खाद्य पदार्थ जो कम मूल्य पर आसानी से उपलब्ध हों जैसे मक्का, ज्वार, दालों की चूरी, बिनौला, तेल बीजों की खली आदि का प्रयोग करना चाहिये। सस्ते सन्तुलित सान्द्र आहार स्थानीय रूप से उपलब्ध आहार घटकों को मिलाकर तैयार किये जा सकते हैं। जिसमे 70 प्रतिशत अनाज एवम् इसके छिलके तथा 30 प्रतिशत खली का मिश्रण बना सकते हैं। पशुपालक चारे-दाने की उपलब्धता अनुसार उपरोक्त पोषण कार्यक्रम अपनायें तो गौ पशु न केवल स्वस्थ रहेंगे बल्कि उनसे होने वाला उत्पादन भी अधिक एवम् सस्ता होगा जो पशुपालकों के लिये अत्यन्त लाभकारी सिद्ध होगा।

**सन्तुलित आहार की कमी के दुष्प्रभाव**

1. बछड़े-बछड़ियों की वृद्धि रुक जायेगी तथा वे ज्यादा उम्र में वयस्क होंगे।
2. पशु कमजोर एवम् बीमार हो जायेंगे, इनकी रोग प्रतिरोधी क्षमता कम हो जाने से प्राय: बीमार रहेंगे।
3. वयस्क मादा समय पर गर्मी में नहीं आयेगी एवम् गर्भधारण नहीं कर पायेगी।
4. गर्भधारण कर लेने पर गर्भपात होने की सम्भावना रहेगी।
5. दुग्ध उत्पादन क्षमता कम होगी।
6. साँडों में उत्तेजना कम एवम् शुक्राणुओं के निष्क्रिय होने की सम्भावना रहेगी।
7. भारवाहक एवम् खेती में काम आने वाले पशुओं की कार्यक्षमता कम हो जायेगी।

# हरे चारे एवम् औषधि के रूप में सहजन की खेती

*- ब्रजेश चन्द्र उपाध्याय*

इस सहजन को वैज्ञानिक भाषा में **मोरिंगा ओलिफेरा** और आम बोलचाल में **सेंजना** कहते है। सहजन स्वयं ही अपने आप में पूरी फसल है, फिर भी इसे पशुपालक पशुओं के हरे चारे के साथ-साथ सहजन को आर्थिक लाभ कमाने के उद्देश्य से भी उगाने लगे हैं। क्योंकि सहजन लगातार मुनाफा देने वाली फसल है। सहजन की जड़, तना, पत्ती, फूल व फल का अलग-अलग इस्तेमाल होने के कारण इसकी अलग-अलग रूप में माँग होती है।

सहजन की महत्वपूर्ण बात यह है कि सहजन के पेड़ का इस्तेमाल दवा,

ईधन, इमारती लकडी, भोजन के साथ-साथ पशुओं के चारे के रूप में किया जाता है। सहजन उन्हीं पेड़ों में से एक है, जिसका प्रत्येक हिस्सा औषधीय गुणों से परिपूर्ण होता है। सहजन महत्वपूर्ण पौधा होने के साथ-साथ तेज गति से बढ़ने वाला पौधा है। तेज तापमान में भी यह फलता-फूलता है। सहजन पर सफेद फूल और नुकीली हरी फलियाँ लगती हैं। सहजन में पोषक तत्वों की भरमार होती है। इसी कारण इसके फल, फूल व पत्तियाँ तीनों मनुष्य के साथ-साथ पशुओं के लिये बहुत ही महत्वपूर्ण हरा चारा है। सहजन में कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, विटामिन, कैल्शियम, फास्फोरस व आयरन अच्छी मात्रा में पाया जाता है। सहजन के पके हुये बीज से कीमती तेल प्राप्त होता है, जो सौन्दर्य प्रसाधन, लुब्रीकेण्ट व इत्र बनाने के काम आता है। सहजन के दाने में पौलीपेप्टाइड नामक तत्व पाया जाता है, जो खराब पानी को पीने योग्य भी बनाता है। सहजन की खासियत यह है कि यह हर प्रकार की मिट्टी में आसानी से उग जाता है।

**भूमि:**- दोमट व बलुई मिट्टी सहजन के लिए श्रेष्ठ मानी जाती है। जहाँ पाला पड़ता हो और पानी भरे रहने की संभावना हो उस स्थान पर सहजन नहीं पनप पाता।

**जलवायु:**- सहजन की खेती हम गर्म और नम जलवायु में कर सकते हैं। मगर उत्तम पैदावार लेने के लिये सही तापमान 25 से 30 डिग्री से. होता है। किन्तु 48 डिग्री से0 तापमान को भी यह आसानी से सहन कर लेता है।

**बुवाई का समय:**- इसकी बुवाई जून के अन्तिम सप्ताह से जुलाई के अन्तिम सप्ताह तक कर देनी चाहिये। 3 महीने की अवधि तक सहजन के पौधे की देखभाल महत्वपूर्ण होती है उसके बाद सहजन का पौधा तीव्र गति से बढ़ने लगता है।

**प्रजाति:**- इसकी प्रजातियों को 3 भागों में विभक्त किया गया है-

**(क) कम व सीधी शाखा-**

(1) इस प्रजाति में 3 तरह की फलियाँ पायी जाती है-

**क**-15 से 25 से0मी0 **ख**-25 से 40 से0मी0

**ग**-15 से 90 से0मी0

जिसे किसान आम भाषा में छोटे, मध्यम व लम्बे आकार की फली के रूप में पुकारता है।

**(ख) जीवन चक्र के आधार पर सहजन को 2 भागों में विभक्त किया है-**

**(1) एक साल का पौधा**- दक्षिण एवम् उत्तरी भारत में पी.के.एम.-1, पी.के.एम.-2 को उत्तम प्रजाति माना गया है।

**(2) बहुवर्षीय पौधा**- बहुवर्षीय सहजन उगाने के लिये चावाकाचौरी, मूरिगाई, जेम मूरिगाई, काट्टू मूरिगाई, कोडकाल मूरिगाई, पाल मुरिगाई, पूना मूरिगाई, याजफानम मूरिगाई प्रमुख प्रजाति है।

**पौध तैयार करना:**- बहुवर्षीय सहजन की पौध तने द्वारा तैयार की जाती है। तबकि एकवर्षीय किस्मों की पौध बीज से तैयार की जाती है।

एक वर्षीय सहजन की फसल उगाने के लिए इस बात का विशेष ध्यान रखा जाय कि बीज 6 माह से अधिक पुराना न हो। बुवाई से पूर्व बीज को 18 से 24 घण्टे तक पानी में भिगो देना चाहिए। जिससे बीज का अंकुरण जल्दी और अच्छा होता है। इस प्रकार सहजन के पौधे 40 से 60 दिन में रौपाई करने योग्य हो जाते है। यदि बीज थैलियों में बोया जाता है तो उससे होने वाले पौधे तेज गति से बढ़ते है। सहजन को बहुवर्षीय से कम भी लगा सकते हैं किन्तु ध्यान देने योग्य बात यह है कि कलम की लम्बाई एक मीटर और मोटाई 5 से 10 सेमी होनी चाहिए। कलम लगाने का सही समय जून से अगस्त माह है।

**रोपाई:**- जब पौधा 15 से 30 सेन्टीमीटर हो जाये तो रोपाई कर सकते हैं। रोपाई से पहले खेत में 50 सेन्टीमीटर गहरे लम्बे व चौडे गढ्ढे खोद कर उसमें 4 से 5 किलोग्राम गोबर की सड़ी खाद, 10 ग्राम फ्यूराडान मिट्टी में मिला कर भर देते है। रोपाई के समय नाइट्रोजन की एक चौथाई, फास्फोरस की पूरी मात्रा तथा पोटाश की आधी मात्रा को मिट्टी में मिलाकर रोपाई करनी चाहिए। बहुवर्षीय सहजन के पौधे से पौधे की दूरी 4 से 5 मीटर तथा एक वर्षीय सहजन के पौधे की दूरी ढाई मीटर रखते हैं।

**खाद व उर्वरक:**- पौध रोपाई से पहले गढ्ढे में सड़ी गोबर की खाद 4 से 5 किलोग्राम प्रति गढ्ढा डालते हैं तद्उपरान्त 250 ग्राम नाइट्रोजन, 150 ग्राम फास्फोरस और 100 ग्राम पोटाश प्रति पौधा इस्तेमाल करना चाहिए। पौध रोपाई के समय नाइट्रोजन की एक चौथाई मात्रा, फास्फोरस की आधी मात्रा और पोटाश की आधी मात्रा डालनी चाहिए। इसके अतिरिक्त बची हुई शेष नाइट्रोजन, पोटाश को फूल व फल आने पर डाले।

**सिंचाई:**- सहजन सोखा सहन करने वाला पौधा है। पौध लगाने से लेकर एक महीने तक आवश्यता अनुसार सिंचाई करें। गर्मियों में 10 दिन और सर्दियों में 20 दिन सिंचाई करना लाभप्रद होता है।

**पैदावार:**- जुलाई-अगस्त महीने में लगाये गये एक वर्षीय पौधे से अप्रैल-मई में खाने लायक फलियाँ तैयार हो जाती हैं। शेष पुन: 4 से 5 महीने बाद सितम्बर-अक्टूबर में फलियाँ आ जाती हैं।

बहुवर्षीय पौधे से फलियाँ मार्च-अप्रैल के महीने में तोड़ने योग्य हो जाती हैं। एक वर्षीय पौधे से लगभग 4 से 5 किलोग्राम प्रति पौधा या 50 से 60 कुन्टल प्रति हैक्टयर उपज ली जा सकती है। बहुवर्षीय पौधे से 20 से 30 किलोग्राम फलियाँ प्रति पौधा प्राप्त होती हैं।

**चारे के अतिरिक्त सहजन के अन्य उपयोग एवम् लाभः-**

**फली:-** सहजन की फलियाँ फरवरी से मई तक लगती हैं। कच्ची फलियाँ व फूलों की सब्जी बना कर लोग बड़े चाव से खाते हैं।

**जड़:-** सहजन की जड़ का इस्तेमाल मसाले के तौर पर किया जाता है। जब यह पौधा 2 फुट का हो जाए, तब उसकी जड़ निकाल कर छाल को हटा लें और उसे मसाले के तौर पर इस्तेमाल करें। ध्यान रखें जड़ का ज्यादा इस्तेमाल कतई न करें। जड़ को त्वचा की बीमारियों के इलाज में भी इस्तेमाल किया जाता है।

**बीज:-** इसके बीजों को पीस कर पानी में डालकर उन्हें पानी साफ करने के काम में लाते है। तलाब, नदियों व कुओं में पानी को साफ करने के लिए इसके बीजों का इस्तेमाल किया जाता है। इसका पाउडर पानी में घुली हुई गंदगी को हटाने में मदद करता है। इसके बीजों में 36 फीसदी तेल होता है। जिसका इस्तेमाल शरीर व चेहरे पर लगाई जाने वाली क्रीम व मशीनों का तेल बनाने के लिए किया जाता है। बीज निकालने के बाद जो खली बचती है। वह खाद के तौर पर इस्तेमाल होती है।

**तना:-** सहजन का तना घर का फर्नीचर बनाने, लकड़ी के बॉक्स व कागज बनाने के लिए इस्तेमान में लाया जाता है। इसकी टहनियाँ वाले रेशे से रस्सी बनायी जाती है। सहजन की टहनियाँ और तने से गोंद निकलता है। इस गोंद का इस्तेमाल रंगाई-छपाई उद्योग व गोंद उद्योग के साथ दवा उद्योग में भी होता है। सहजन के फूल, पत्तियाँ, छाल व इसके बने तेल का इस्तेमाल कई तरह की घरेलू दवा बनाने में भी किया जाता है।

# लिंग चयनित वीर्य : वर्तमान आवश्यकता

*- पवनजीत सिंह एवम् प्रशान्त सिंह*

लिंग चयनित वीर्य (Sex Sorted Semen) तकनीकी एक बहुउद्देशीय पशु प्रजनन नियंत्रण पद्याति है जिसमें उत्तम नस्ल के सांड के वीर्य में **X** और **Y** गुणसूत्र के अनुपात को फ्लो साइटोमेट्री तकनीकी से नियन्त्रित किया जाता है जिसके बाद हम अपनी इच्छानुसार पशुप्रजनन को नियन्त्रित कर सकते हैं। यह तकनीकी अभी गौवंश में ही विकसित हुई है, भैसों में नहीं।

**उद्देश्य :** जैसा कि हम सब जानते हैं कि वर्तमान कृषि परिवेश में खेती में बैलों का प्रयोग न के बराबर हो गया है और नर गौ पशुओं की संख्या में लगातार वृद्धि हो रही है इन नर गौ पशुओं का उपयोग न होने के कारण ये यूँ ही गाँव व शहरों में विचरण करते रहते हैं व खेती को नुकसान पहुँचा रहे हैं। शहरों में सड़कों पर बैठे रहते हैं जिससे जाम की स्थिति पैदा हो गई है ये नर गौवंश बहुत हिंसक प्रवृत्ति के होते हैं जिससे मनुष्यों को जानमाल का पूरा खतरा पैदा हो गया है। अत: सिर्फ लिंग चयनित वीर्य तकनीकी से ही हम लिंग चयन कर नर गौ पशु संतति की संख्या को नियंत्रित कर सकते हैं।

**अनुसंधान :** वर्तमान समय में भारत सकार इस विषय पर बहुत चिंतित है उसने इसके लिए 500 करोड़ की परियोजना देश के कई राज्यों में शुरू की है जैसे बाबूगढ़ (उ.प्र.) में।

**किसानों की आय दोगुनी करने का लक्ष्य :** भारत की अर्थव्यवस्था में कृषि का योगदान सबसे ज्यादा है परन्तु जनसंख्या वृद्धि के कारण कृषि योग्य जमीन कम हो जाने से किसानों की आय कम हो गई है। परन्तु इस पद्धति से मादा गौ वंश ही पैदा होने से किसानों की आय में बढ़ोत्तरी भी होगी। दूध एक सम्पूर्ण भोजन है जिसकी आवश्यकता सम्पूर्ण विश्व में है दूध उत्पादन में बढ़ोत्तरी ही वर्तमान में किसानों की आय में वृद्धि कर सकता है।

**राष्ट्रीय लाभ :** भारत की वर्तमान जनसंख्या 125 करोड़ से अधिक है और इतनी बड़ी जनसंख्या को दूध आपूर्ति करना एक बड़ी चुनौती है इस तकनीकी से नरपशुओं की जगह मादा सन्तति ही पैदा होगी जिससे की देश में दूध की उपलब्धता में वृद्धि होगी।

**वैज्ञानिक दृष्टिकोण :** जैसा कि हम जानते है गाय का दूध A2 प्रोटीन युक्त हो ता है जो कि हृदय के लिए बहुत अच्छा है। विदेशी गायों की अपेक्षा देशी नस्ल की गायों (हरियाणा, साहीवाल आदि) में A2 का स्तर बहुत ही अच्छा होता है और आज के स्वास्थ्य परिवेश को देखते हुए ही वैज्ञानिक इस पर नये-नये अनुसंधान कर रहे हैं। विदेशी नस्ल की गायों (जर्सी, होल्सटीन आदि) में दूध की मात्रा तो अधिक है परन्तु इनका दूध हमारी देशी गायों के दूध की अपेक्षा कम पोषित है।

**किसानों को सन्देश :**

जैसा कि देश की वर्तमान आवश्यकता है किसानों की आय बढ़ाने की तो इस लिंग चयनित कृत्रिम गर्भाधान पद्धति से दूध उत्पादकता बढ़ाकर अपनी आय बढ़ा सकते हैं। यह कृत्रिम गर्भाधान आपके द्वार पर व आपके निकटस्थ पशु चिकित्सालय पर उपलब्ध है। नर पशुओं द्वारा फसल को भी नुकसान होता है इस तरह यह नुकसान भी कम हो जायेगा। इस तरह उपरोक्त सभी पहलुओं पर विचार करते हुए व वर्तमान गौवंश की आवश्यकता को देखते हुए सरकार को अभी बहुत सहयोग करने की आवश्यकता है। जिससे यह पद्धति और कारगर हो सके। किसानों को भी जागरूक करने की आवश्यकता है कि वह कृत्रिम गर्भाधान सिर्फ लिंग चयनित वीर्य द्वारा ही करवायें।

# जेर का रूकना : प्रबन्धन और रोकथाम

*- विकास सचान, जितेन्द्र अग्रवाल एवम् अतुल सक्सेना*

जेर का अलग होना तथा बाहर निकलना एक जटिल प्रक्रिया है, जो बच्चा होने से पहले ही विभिन्न हार्मोन्स तथा जैव रसायनों द्वारा शुरू हो जाती है। माँ की तरफ के जेर के हिस्से को कैरंकल तथा बच्चे की तरफ के हिस्से को कॉटिलिडन कहते हैं। कैरंकल तथा कॉटिलिडन में गहरा जुड़ाव होता है तथा इसके द्वारा बच्चे को माँ से पोषण प्राप्त होता है तथा विभिन्न गैसों, हार्मोन्स और रसायनों का परिवहन होता है।

सामान्यत: बच्चा होने के 6-12 घण्टे में जेर बाहर निकल जाती है, यदि ऐसा नहीं होता है तो इसे हम जेर रूकना कहते हैं। जेर रूकने के कारण पशु के स्वास्थ्य पर विपरीत प्रभाव पड़ता है तथा धीरे-धीरे पशु का दूध कम हो जाता है। पशु अगली बार सही समय पर गर्मी में नहीं आता है। ग्याभन होने को क्षमता भी कम हो जाती है। ग्याभन देरी से होने के कारण अगला बच्चा भी देरी से मिलता है जिससे पशु पालक को आर्थिक हानि होती है। यदि एक ब्यौंत में जेर रूकने की दिक्कत आती है तो अगली ब्यौंत में भी इस बीमारी के होने को सम्भावना रहती है। इसलिए हमें प्रजनन के लिए ऐसे पशुओं का चयन करना चाहिए जिनमे पिछली ब्यौंत में जेर रूकने की शिकायत ना रही हो।

**जेर ना गिरने के कारण:** जब करेंकलस-कोटीलिडेन्स के बीच संबंध बच्चा होने के बाद भी मजबूत बना होता है। तब जेर ना गिरने की शिकायत पशु को होती है। जेर ना गिरने की सम्भावना कई कारणों से बढ़ जाती है जैसे गर्भपात, समय से पूर्व बच्चा होना, मरा हुआ बच्चा होना, जुड़वाँ बच्चे होना, कैल्शियम की कमी, विटामिन ई तथा सेलेनियम की कमी, गाय की ज्यादा उम्र का होना, दवाइयों द्वारा प्रसव को प्रेरित करना, हॉर्मोन्स का असन्तुलन होना, रोग प्रतिरोधक क्षमता का कम होना, संक्रामक एजेंट, ऑपरेशन होना, बच्चेदानी का निष्क्रिय या अक्रियाशील होना, पोषक तत्वों की कमी होना आदि। चार से अधिक ब्यौंत वाले पशुओं में इस बीमारी के होने की सम्भावना बढ़ जाती है। नर बच्चे के पैदा होने के बाद भी इस बीमारी के होने की सम्भावना अधिक होती है। जेर ना गिरने की समस्या बसन्त (Spring) तथा गर्मी (Summer) ऋतु में सर्वाधिक होती है। तथा पतझड़ (Autumn) में सबसे कम होती है। जिन पशुओ में जेर ना गिरने की शिकायत होती है उनमे एस्ट्रोजन हॉर्मोन का स्तर कम हो जाता है।

**लक्षण तथा पहचान:** पशु के ब्याने के 12 घण्टों के बाद भी संपूर्ण जेर बाहर नहीं आता है। जेर का कुछ हिस्सा शरीर से बाहर लटकता भी दिखाई दे सकता है। बच्चेदानी में समय के साथ जेर धीरे-धीरे सड़ने और गलने लगती है। ज्यादा समय बीत जाने पर, बच्चेदानी के रास्ते से बदबू भी आने लगती है। जेर का रंग फीका पड़ जाता है तथा जेर क्षीण होने लगता है। जब जहर शरीर में फैलने लगता है तो अन्य लक्षण भी दिखाई देते हैं जैसे भूख कम लगना, शरीर का तापमान बढ़ जाना, दूध का कम होना, श्वसन दर तथा ह्रदय दर का बढ़ना आदि। पशु बच्चेदानी के रास्ते बार-बार जोर लगाता है। जेर के ना गिरने से अन्य बीमारियों के होने की संभावना बढ़ जाती है जैसे गर्भाशय शोथ (मैट्राइटिस), कीटोसिस, थनों में सूजन, बच्चेदानी में सूजन, बच्चेदानी में मवाद पड़ना, टॉक्सिमिया आदि।

**बीमारी का प्रबन्धन :** बच्चा पैदा होने के तुरंत बाद बच्चे को पशु का दूध पिलाना चाहिए तथा नियमित रूप से पशु का दूध निकालना चाहिए। जेर को तुरन्त हाथों से नहीं निकालना चाहिए। हाथों से जेर खींचने की विधि सामान्यत: गाँव में झोलाछाप डॉक्टरों द्वारा उपयोग की जाती है। परन्तु हाथों से जेर खींचकर बाहर निकालने से बचना चाहिए क्योंकि इससे पशु की बच्चेदानी को हानि पहुँच सकती है। अत: यदि पशु के ब्याने के 12 घंटो के अंदर जेर ना निकले तो दो से तीन दिन तक जेर को अंदर ही सड़ने देना चाहिए। उसके बाद ही जेर को बच्चेदानी से बाहर निकलना चाहिए। क्योंकि दो से तीन दिन में जेर का बच्चेदानी से सम्बन्ध कमजोर हो जाता है और इस सड़े हुए जेर को निकलना आसान रहता है।

जेर को निकालने के बाद एंटीबायोटिक दवा देना असरकारक है जिससे दवाई खून के द्वारा संपूर्ण शरीर में पहुँचती है। यदि पशु अन्य लक्षण दिखाने लगे (जैसे बुखार आना, भूख कम होना, दूध कम होना आदि), तो तत्काल पशु चिकित्सक से सम्पर्क करना चाहिए । ब्याने के बाद पशु में कैल्सियम की कमी हो जाती है। इसकी कमी के कारण बच्चेदानी अक्रिय हो जाती है। पशु को कैल्शियम देने से बच्चेदानी पुन: शक्त हो जाती है। साथ ही विटामिन ई तथा सेलेनियम के टीके लगवा सकते है। लिवर को दुरस्त रखने के लिए लिवर टॉनिक भी पिलाना चाहिए।

**रोकथाम के उपाय:** जेर रूकने की बीमारी पशु की रोग प्रतिरोधक क्षमता से सम्बन्धित है। यदि पशु की रोग प्रतिरोधक क्षमता कम हो जाती है तो इस बीमारी के होने सम्भावना बढ़ जाती है। अत: ग्याभन अवस्था के मध्य नियमित व्यायाम कराना चाहिए तथा पशु को सन्तुलित पोषण प्रदान करना चाहिए। मिनरल मिक्सचर भी पशु को देना चाहिए। पशु आहार में पोषक तत्व जैसे विटामिन ई, सेलिनियम, कैल्शियम, फॉस्फोरस, कॉपर, कोबाल्ट, मैग्नीज, मैग्नीशियम, जिंक, आयोडीन, आयरन आदि पर्याप्त मात्रा में होने चाहिए। समय समय पर विभिन्न बीमारियों के टीके लगवाने चाहिए। गर्भावस्था के दौरान यदि पशु को कोई बीमारी होती है तो उसको नजरअंदाज ना करें तथा पशु चिकित्सक से इलाज करायें।

# कृषि एवम् पशुपालन से सम्बन्धित कार्यों से जुड़े व्यक्तियों में फैलने वाले प्राणिरूजा रोग (जूनोसिस) तथा उनकी रोकथाम

- अदित जैन, पारूल एवम् रविन्द्र मिश्रा

रोगी पशु-पक्षियों से स्वस्थ पशु-पक्षियों व मनुष्यों में फैलने वाले इन संचारी रोगों को अंग्रेजी में "जूनोसिस" कहते हैं। हिन्दी में इन्हें "प्राणिरूजा रोग" भी कहते हैं। ऐसे रोग मनुष्यों से वापस अन्य स्वस्थ मनुष्यों व पशुओं में भी फैल सकते हैं।

जूनोसिस रोगों के कारण पशु-पक्षियों की न केवल बहुत अधिक संख्या में मृत्यु होती है बल्कि उनके स्वास्थ्य, उत्पादन व कार्य करने की क्षमता में भी भारी कमी होती है। अत: इन रोगों के कारण किसान व पशुपालक भाइयों को अत्यधिक आर्थिक हानि उठानी पड़ती है।

अब तक लगभग 300 से अधिक प्राणिरूजा रोग पहचाने जा चुके हैं जो पशुओं के साथ-साथ मनुष्यों को भी रोगग्रस्त करते हैं। अपने पशु-पक्षियों की देखभाल करते समय किसान व पशुपालक बार-बार उनके निकट सम्पर्क में आते हैं, विशेषत: उनके चारे-पानी व दाने की व्यवस्था करते समय, पशुओं को नहलाने तथा बाड़े की साफ-सफाई करते समय, गर्भावस्था में मादा पशुओं व जन्म के समय नवजात पशुओं की देखभाल करते समय, कृषि व पशुपालन से सम्बन्धित कार्यों में उनका उपयोग करते समय तथा उनके साथ एक ही छत के नीचे रहने व सोते समय। ऐसे समय पर इस बात की अधिक सम्भावना बनी रहती है कि उनके पशु-पक्षियों को संक्रमित करने वाले कुछ रोगाणुओं से वे स्वयम् भी संक्रमित हो सकते हैं।

**पशुओं और मनुष्यों को प्रभावित करने वाले विभिन्न प्रमुख प्रकार के प्राणिरूजा रोग निम्नलिखित हैं**

(1) **रेबीज या अर्लक रोग** (पागल कुत्ते (मुख्यत:), बिल्ली, बन्दर, नेवला, सियार व लोमड़ी की लार में पाया जाने वाला विषाणु है

(2) **बर्ड फ्लू (ऐवियन इनफ्लूएंजा एच5 एन1 नामक विषाणु से होने वाले मुर्गियों की अत्यन्त संक्रामक महामारी),**

(3) **जेपेनीज बी मस्तिष्क शोथ या जापानी मस्तिष्क ज्वर (संक्रमित मच्छर के काटने से फैलने वाला)**

(4) **एन्थ्रेक्स या गिल्टी रोग** (रोगी पशु के स्रावों द्वारा दूषित चारे व पानी द्वारा होने वाला घातक संक्रामक रोग

(5) **ब्रूसेल्ला संक्रमण द्वारा पशुओं में गर्भपात व अन्य प्रजनन रोग**

(6) **टी.बी., तपेदिक या यक्ष्मा रोग** (रोगी पशु की सांस से संक्रमित वायु द्वारा पशुओं के फेफड़ों व अन्य अंगों का घातक संक्रमण),

(7) **प्लेग** (चूहों के पिस्सुओं द्वारा काटने से होने वाला अत्यन्त घातक गिल्टी या फेफड़ों का रोग अथवा जहरबाद),

(8) **लेप्टोस्पाइरोसिस** (रोगी पशुओं व चूहों के मूत्र द्वारा अथवा बरसात या सीवर लाइनों के गंदे पानी द्वारा दूषित जल को पीने **अथवा इस जल में रहकर** खेतों में देर तक नंगे पैर कृषि कार्य करने से **त्वचा द्वारा फैलने वाला आंतों, यकृत तथा वृक्कों (गुर्दों) का घातक संक्रमण),**

(9) **टाक्सोप्लाज्मोसिस या टाक्सोप्लाज्मा संक्रमण** (पालतू बिल्लियों के मल से दूषित भोज्य पदार्थों व जल द्वारा होने वाला गर्भपात व अन्य रोग),

(10) **दाद या रिंगवर्म संक्रमण** (पशुओं व मनुष्यों की त्वचा, बालों या नाखूनों को प्रभावित करने वाली गोल सिक्के के रूप में फैलने वाली खुजली),

**प्राणीरूजा रोगों की रोकथाम के कुछ सामान्य उपाय**

- **बचाव, उपचार की अपेक्षा अच्छा है** - ये छूत के रोग संक्रामक एंव बहुत भयानक होते है। जिसमें करोड़ों की संख्या में पशु प्रतिवर्ष मृत्यु के घाट उतरते हैं। रोकथाम के मुख्य उपाय जिनको अपनाकर पशु-पालक आपातकाल में अपने पशुओं की प्राणीरूजा रोगों से रक्षा कर सकते हैं।
- **आदर्श प्रबन्धन**- पशु स्वस्थ रखे जाएँ। उनके आहार, प्रजनन व रोग परीक्षण, निदान तथा उपचार का समुचित प्रबन्ध किया जाए। समय-समय पर रोगों के टीके लगाये जाए।
- **बीमार पशुओं को स्वस्थ पशुओं से अलग कर देना चाहिए** -
- मेले अथवा हाट से नये खरीदे गये पशुओं को स्वस्थ पशुओं से एक माह के अन्तराल तक अलग रखने के पश्चात ही पशुबाड़े के अन्य स्वस्थ पशुओं से मिलाना चाहिये
- **रोगी पशुओं के दूध या माँस का उपयोग बिल्कुल न किया जाए।** दूध, माँस, अण्डे व इनके अन्य उत्पादों को यदि मनुष्यों के उपयोग में लाया भी जाये तो यह अति आवश्यक है कि इन पदार्थों को उबालकर, पास्चुरीकरण द्वारा अथवा डिब्बाबंद करने की विधि (केनिंग) द्वारा विसंक्रमित किया जाये।
- **थनैला से ग्रस्त रोगी पशुओं के दूध का सेवन रोग काल में तथा थनों में दवा चढाने के 72 घंटों बाद तक कदापि नहीं करना चाहिये।**
- **रोगी पशुओं अथवा उनके अन्य उत्पादों (दुग्ध, माँस, अण्डे) के सर्म्पक में आये बर्तनों व हाथों को कार्बोलिक साबुन या**

**क्लोरीन स्रोत जैसे डौमेक्स या ब्लीचिंग पाउडर के घोल से धोकर अवश्य विसंक्रमित किया जाना चाहिये।**

- **दूषित चरागाह पर चूना छिड़कवा** कर अथवा हल चलवा कर उसे 5-6 माह की अवधि के लिये खाली छोड़ देना चाहिए।
- **प्राणीरूजा रोग से मरे पशु के शव और बिछावन आदि का उचित प्रबन्ध** - रोगी पशुओं के पालन क्षेत्रों तथा मृत्यु स्थल को फार्मलीन, कार्बोलिक अम्ल, फिनायल, लाइसौल अथवा डिटौल आदि के घोल से विसंक्रमित किया जाना चाहिये।
- **मृत पशुओं को गहरे गाड़कर या जलाकर इस प्रकार विसर्जित किया जाये** कि रोग का फैलाव कीट-पतंगों, वन्य पशुओं व अन्य किसी कारण से न हो सके।
- **प्राणीरूजा रोग से मृत हुए पशु का शव खुले मैदान, नदी या तालाब में नहीं फेंकना चाहिये और न ही उसकी खाल उतारने देना चाहिए।**
- **मृत पशु तथा उससे सम्बन्धित पदार्थ जैसे मल-मूत्र, बिछावन आदि को या तो आग में जला देना अथवा गहरा गड्ढा खोदकर उसके ऊपर व नीचे चूने की 20-30 सेमी की सतह बिछाकर पशु के शव को मिट्टी से बन्द कर देना चाहिये।** इस गडढे के चारों ओर कँटिदार तार या खाई लगवा देना चाहिए, जिससे स्वस्थ पशु वहाँ चरने के लिये न पहुँच सके। ऐसा करने से स्वस्थ पशुओं को रोग लगने का भय नहीं रहता।
- **प्राणीरूजा रोग का निदान एवम् बचाव हेतु पशुओं का टीकाकरण** - किसी प्रदेश या क्षेत्र में व्याप्त मुख्य प्राणीरूजा रोगों जैसे रेबीज, एन्थ्रेक्स, संक्रमित गर्भपात (ब्रुसेल्लोसिस, लेप्टोस्पाइरोसिस, क्यू ज्वर संक्रमण) से पशुओं को बचाने के लिये इन रोगों का त्वरित निदान व उपलब्ध टीकों द्वारा टीकाकरण अतिआवश्यक है।
- **रोग की त्वरित सूचना** - रोग की आशंका होने पर तुरन्त ही समीप के पशुचिकित्सक को सूचना देकर बुलवा भेजना चाहिए, जिससे कि उसकी सहायता से रोग आगे न बढ़ने पाये।
- **प्राणीरूजा पशु रोगों को लगातार निगरानी में रखना चाहिए** - यदि आवश्यक हो तो विशिष्ट क्षेत्रों में मुख्य रोगों के सर्वेक्षण का कार्य भी समय-समय पर किया जाना चाहिए
- **जनसाधारण में प्राणीरूजा रोगों के प्रति जागरूकता उत्पन्न की जानी चाहिए** - यह काम मुख्यत: ग्रामीण क्षेत्रों में प्रशिक्षण, विज्ञापनों, व्याख्यानों तथा चलचित्रों द्वारा किया जा सकता है।

उपरोक्त तथ्यों से स्पष्ट है कि पशुओं के स्वास्थ्य का मनुष्यों के स्वास्थ्य एवम् उसकी आर्थिक स्थिति पर गम्भीर प्रभाव पड़ता है। अत: यह अत्यन्त आवश्यक है कि पशुओं को पूर्णरूप से स्वस्थ रखा जाए जिससे बहुत बड़ी सीमा तक प्राणीरूजा रोगों से बचाव को सुनिश्चित किया जा सकता है।

## भ्रूण प्रत्यारोपण : एक वरदान

*- विकास सचान एवम् अक्षय कुमार*

पशुपालन किसानों के लिए सदियों से एक मुख्या पेशा रहा है। पशुओं की उपयोगिता इसलिए भी महत्वपूर्ण है क्योंकि कृषि से जुड़े कई प्रमुख कार्यों में इनका इस्तेमाल किया जाता रहा है। इनके गोबर से बनी खाद कृषि उपज को बढ़ा देती है। पशुओं से होने वाला दुग्ध उत्पादन किसानों एवम् पशुपालकों की आय का प्रमुख साधन भी है। समुचित आय हेतु पशुओं में सही समय पर प्रजनन अत्यन्त आवश्यक है। आजकल एक गाँव में अच्छी नस्ल के एक या दो भैंसे या सांड मिलते हैं जिनसे प्रजनन की प्रक्रिया कराई जाती है। ऐसे में गाय और भैंस में सही समय पर गर्भधारण नहीं हो पाता जिससे उनकी दुग्ध उत्पादन की क्षमता प्रभावित होती है और इसका सीधा असर किसानों की आय पर पड़ता है। बिना लाभ के इन पशुओं का खान पान एवम् प्रबन्धन पशुपालक के लिए मुश्किल होता है और मजबूरन इन पशुओं को छोड़ना पड़ता है।

प्राकृतिक गर्भाधान से पशु के गर्भित होने के आसार अधिक होते हैं परन्तु इससे केवल एक पशु ही एक बार में गर्भित हो सकता है। इस समस्या को कृत्रिम गर्भाधान, एक जैव प्रौद्योगीकी तकनीकी, के द्वारा समुचित एवम् काफी हद तक व्यवस्थित रूप से दूर किया जा सका है। कृत्रिम गर्भाधान की तरह ही भ्रूण प्रत्यारोपण वर्तमान की एक बहुचर्चित प्रौद्योगिकी है जो पशुओं के अनुवांशिक विकास एवम् संरक्षण में महत्वपूर्ण स्थान रखती है। जिस प्रकार कृत्रिम गर्भाधान तकनीकी से उत्तम कोटि के नर पशु का प्रयोग अधिकाधिक संतान उत्पत्ति के लिए किया जाता है उसी प्रकार भ्रूण प्रत्यारोपण प्रौद्योगिकी उत्तम कोटि की मादा से अधिकाधिक संख्या में सन्तान प्राप्ति करने का साधन प्रदान करती है। इसके अतिरिक्त इस तकनीकी के द्वारा हम ऐसे मादा पशु जो अनुवांशिक रूप से उत्तम नहीं माने जा सकते हैं परन्तु जनन के लिए उपयुक्त हैं, का प्रयोग अधिक संख्या में आनुवांशिक रूप से उन्नत सन्तानों को प्राप्त करने में कर सकते हैं।

विश्व का सबसे पुराना भ्रूण प्रत्यारोपण वाल्टेर हीप द्वारा सन् 1890 में

किया गया जिससे अंगोरा खरगोश भ्रूण को बेल्जियम मादा में प्रत्यारोपित कर बेल्जियम एवम् अंगोरा बच्चे प्राप्त किय गए। कालांतर में इस प्रौद्योगिकी का सफल प्रयोग गाय, भैंस, सूकर, बकरी एवम् भेंड़ में भी किया जा चुका है।

भ्रूण प्रत्यारोपण एक जटिल प्रक्रिया है जिसमें निम्न चरण सम्मिलित हैं-

1. प्रदाता मादा का चुनाव,
2. अधिडिम्बक्षरण,
3. मादा का कृत्रिम गर्भाधान,
4. भ्रूणों का संग्रहण एवम् उनका मूल्यांकन,
5. ग्राही मादा का चुनाव एवम् तैयारी तथा
6. भ्रूण का प्रत्यारोपण

ये क्रियायें काफी श्रम एवम् लागत पर निर्भर करती हैं। भ्रूण प्रत्यारोपण तकनीकी उच्च गुणवत्ता वाली मादा पशु (गाय एवम् भैंसों) का प्रयोग करके ज्यादा से ज्यादा बच्चे पैदा कराने की वैज्ञानिक विधि है। इस तकनीकी में दाता गाय के डिम्बाश्य से कुछ हॉरमोंस के प्रयोग द्वारा एक बार में कई डिम्ब बनाए जाते हैं। इन सब डिम्बों को अच्छे गुणवत्ता वाले वीर्य से निषेचित किया जाता है। करीब सात दिनों के बाद उनसे बने हुए सभी भ्रूण गर्भाशय से बहार निकाल लिए जाते हैं। प्राप्त भ्रूणों की गुणवत्ता जाँचने के बाद उन्हें वैज्ञानिक विधि द्वारा संग्रहित कर लिया जाता है अथवा ग्राही मादा पशु के गर्भाशय में प्रत्यारोपित कर दिया जाता है।

दाता एवम् ग्राही मादा पशु में ऋतु अच्छी एवम् समकालिक होनी जरूरी है। आरम्भ में भ्रूण प्रत्यारोपण के लिए शल्य तकनीकी का प्रयोग किया गया परन्तु वर्तमान समय में शल्यविहीन तकनीकी अधिक लोकप्रिय है। दाता गाय का चुनाव इस बात पर केन्द्रित होता है की उसके अनुवांशिक गुण उत्तम होने चाहिए भले ही वह अधिक उम्र या अन्य किसी शारीरिक कमी के कारण प्रजनन करने में अक्षम हो। परन्तु भ्रूण प्राप्त करने वाली गाय का अनुवांशिक रूप से उच्च गुणवत्ता वाली होना जरूरी नहीं है अपितु वह शारीरिक रूप से एवम् प्रजनन के लिए सक्षम होनी चाहिए जिससे भ्रूण का गर्भाशय में समुचित विकास हो सके एवम् अन्त में अच्छी नस्ल का बच्चा प्राप्त हो सके।

यद्यपि पशु आनुवंषिक विकास के अधिकांश कार्यक्रम अनुवांशिक विकास की दर में वृद्धि, अनुवांशिक बिमारियों पर रोक, उच्च रोग प्रतिरोधक क्षमता, अनुवांशिक रूप से महत्वपूर्ण परन्तु दुर्लभ पशुओं का संरक्षण एवम् संवर्धन, अधिक दुग्ध उत्पादन और नई एवम् उन्नत नस्ल के पशु तैयार करना इत्यादि को केंद्र पर रखकर नर सन्तान के चुनाव एवम् उनके प्रजनन प्रयोग पर आधारित है। भ्रूण प्रत्यारोपण तकनीकी द्वारा भी ये सभी उद्देश्य प्राप्त किये जा सकते हैं।

कृत्रिम गर्भाधान के द्वारा एक अच्छी नस्ल की गाय से एक बार में एक ही उत्तम संतान प्राप्त की जा सकती है परन्तु भ्रूण प्रत्यारोपण विधि से एक उत्तम नस्ल की गाय से एक बार में 6-8 सन्तानों की प्राप्ति कई भ्रूण ग्राही गायों का प्रयोग करके की जा सकती है। सामान्यतः एक गाय अपने जीवन काल में अधिकतम 8 से 10 बार बच्चे पैदा कर सकती है परन्तु भ्रूण प्रत्यारोपण तकनीकी से एक दाता गाय से प्रत्यारोपित करने लायक 18 से 24 भ्रूण तक प्राप्त किये जा सकते हैं। इस तरह कई मायनों में भ्रूण प्रत्यारोपण तकनीकी कृत्रिम गर्भाधान से बेहतर सिद्ध हो सकती है। परन्तु देखने में आया है की उपरोक्त सभी विशेषताओं के बावजूद भ्रूण प्रत्यारोपण प्रौद्योगिकी का प्रयोग अधिक प्रचलित नहीं हो पाया है। विकासशील देशों में जहाँ पर्याप्त संसाधन की कमी इसका कारण है वही विकसित देशों में भी अधिक लागत होने के कारण इस प्रौद्योगिकी का प्रयोग केवल कुछ विशेष एवम् उत्तम पशु फार्मो तक ही सीमित है। इस तकनीकी को बढ़ावा देने के लिए कम लागत वाली प्रक्रिया बनाने एवम् कुशल व्यक्तियों की आवश्यकता है जिससे पशुपालकों को अधिक से अधिक लाभ मिल सके।

# गलघोंटू या घरघरा या घुर्रका रोग

*- बरखा शर्मा, पारुल एवम् गौरव बशाक*

कृषि एवम् पशुओं से प्राप्त होने वाले उत्पाद ही उनकी जीविका का मुख्य स्रोत हैं अपितु इन सभी के नियमित क्रियान्वयन हेतु जलवायु परिवर्तन एक महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करता है । विभिन्न ऋतु में पशुओं का खान पान एवम् रखरखाव की समुचित व्यवस्था न हो पाने से पालतू पशुओं में विभिन्न संक्रामक रोग होने का खतरा बना रहता है ।

हमारे देश में गलघोटू भैंसों के स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाला एक प्रमुख जीवाणु रोग है, इसको सामान्यत: घरघरा, घोंटुआ, अषढ़िया डकहा आदि नामों से भी जाना जाता है । इस रोग से ग्रसित पशु की मृत्यु होने की सम्भावना अधिक काफी बढ़ जाती है। भैंसों के अलावा यह रोग गाय, सूअरों भेड़ और बकरियों में हो सकता है तथा ऊँट, हाथी, घोड़े, गधे, याक और हिरण और अन्य जंगली जुगाली करने वाले पशुओं में भी इस रोग के जीवाणुओं की विभिन्न प्रजातियों में पाई गई हैं।

हेमोरेजिक सेप्टीसीमिया एक संक्रामक जीवाणु रोग है जो कि पास्चुरेला मल्टोसीडा नामक जीवाणु के दो सेरोटाइप B: 2 और E: 2 के कारण होता

है। इसे दक्षिण पूर्व एशिया में बड़े जुगाली करने वाले पशुओं की सबसे गंभीर बीमारी के रूप में माना जाता है। एचएस अफ्रीका और मध्य पूर्व में भी एक महत्वपूर्ण बीमारी है जिसका दक्षिणी यूरोप में छिटपुट प्रकोप होता है। 1965-1967 में अमेरिका में एचएस की पुष्टि येलोस्टोन नेशनल पार्क में बाइसन में हुई।

उच्च वर्षा, आर्द्रता और कम तापमान एचएस के जीवाणु का संक्रमण बढ़ाने में मददगार साबित होती है। 2007 से 2011 के दौरान, भारत सरकार के पशुपालन, डेयरी और मत्स्य पालन विभाग द्वारा रिपोर्ट किए गए संक्रमित मामलों की औसत संख्या मवेशियों में 2416 और भैंस में 825 थी।

**रोग के फैलाव के कारण -**

स्थानीय क्षेत्रों में यह 6-24 महीने की उम्र के बीच जानवरों में मुख्यत: पाया जाता है कुछ क्षेत्रों में, महामारी उच्च मृत्यु दर और मृत्यु दर के साथ हो सकती है जो 100% तक पहुँच सकती है। संक्रमण या तो स्वस्थ वाहक पशुओं अथवा संक्रमित पशुओं के साथ दूषित भोजन या पानी के अंतर्ग्रहण से संक्रमित मौखिक या नाक स्राव के सम्पर्क से होता है। यह संक्रमण टॉन्सिल नाक के स्राव में सूक्ष्मजीव बाहर निकलते रहते हैं जोकि दूसरे पशुओं को संक्रमित करते हैं।

**रोग के लक्षण**

सामान्य रूप से यह जीवाणु एक स्वस्थ पशु के श्वसन तन्त्र के ऊपरी भाग में मौजूद होता है एवम् प्रतिकूल परिस्थितियों के दबाव में जैसे कि जलवायु परिवर्तन, वर्षा ऋतु, शरद ऋतु समवर्ती संक्रामण रक्त परजीवी या पैर और मुँह की बीमारी कुपोषण लम्बी यात्रा, मुँह पका एवम् खुर पका रोग की महामारी एवम् कार्य की अधिकता आदि के कारण कमजोर पशु को संक्रमण में हो सकता है यह रोग अति तीव्र एवम् तीव्र दोनों का प्रकार संक्रमण पैदा कर सकता है जिससे रोगी पशु में उच्च मृत्यु दर पायी जाती है, इस रोग के लक्षणों में मुख्यत: उच्च बुखार तापमान में वृद्धि (104 ° &106 ° F 40 ° –41-1% C) तीव्र बीमारी 3 से 5 दिनों तक बनी रह सकती है, गर्दन एवम् ब्रिस्किट क्षेत्र के उदर के ऊपरी हिस्से में सूजन और ग्रसनी और स्वसन नलिका पर सूजन, साँस लेने में कठिनाई खुले अत्यधिक अप्रयुक्त लार स्राव मुँह से राल टपकना पशु के साँस लेते समय ऊँची घुड़-घुड़ की आवाज मुँह से साँस लेने पर जीभ का बाहर निकालना, आँखे लाल इसके अलावा म्यूकोसा पर छोटे-छोटे (पेटीचियल) रक्तस्राव अन्तत: समय पर उपचार न मिलने से मृत्यु भी हो सकती है। एक समूह में अत्यधिक मृत्यु दर भी इस बीमारी का संकेत है। एचएस के कई मामलों में 8-24 घंटे के भीतर मृत्यु हो जाती है।

**रोग से रोकथाम एवम् बचाव**

रोग के लक्षण दिखाई देने पर तुरंत नजदीकी पशु चिकित्सक से संपर्क करें ताकि रोगी पशु को सही एवम् समुचित उपचार मिल सके। कुछ व्यापक स्पेक्ट्रम एण्टीबायोटिक्स का उपयोग उपचार के लिए किया जाता है।

**टीकाकरण-**

टीकों को रोकथाम के लिए सबसे अधिक उपयोग किया जाता है और इसमें बैक्टीरिया फिटकिरी-अवक्षेपित और एल्यूमीनियम हाइड्रॉक्साइड जेल टीके और तेल-सहायक टीके शामिल होते हैं। जानवरों में 3 वर्ष की आयु एक प्रारंभिक दो खुराक 1 महीने के अलावा की सलाह दी जाती है तत्पश्चात वार्षिक या वर्ष में दो बार टीकाकरण करें।

एच एस वृद्धि टीका पी -52 / 5-10 मिलीलीटर एस सी

एच एस फिटकरी पीपीटी वैक्सीन / 5-10 मिली एस सी

एच एस तेल कायाकल्प वैक्सीन / 3ml S/C मवेशी और भैंस में

/ 2 मिली एस/सी भेड़ और बकरी में

एच एस, बी.क्यू के लिए वैक्सीन रक्षा ट्रायोवैक का संयोजन।

**रोग नियन्त्रण**

- वर्षा ऋतु से पहले समस्त पशुओं को गलघोंटू के बचाव का टीका पशु चिकित्सा संस्था से मुफ्त लगवायें।
- पशुओं को सड़ा गला भोजन न खिलायें।
- सफाई का पूरा ध्यान रखें।
- आस पास के गाँव में भी इस रोग से बचाव के टीके लगवायें चूंकि यह रोग एक पशु से दुसरे पशु को लगता है।
- बीमार जानवरों को समूह से अलग रखें
- मानसून के मौसम की शुरुआत से पहले उचित टीकाकरण

**संक्रमित पशुओं का उपचार**

पशु आवासों की नियमित सफाई और कीटाणुशोधन के साथ मिटाया जा सकता है।

पी मल्टीसीडा सबसे आम कीटाणुनाशक के साथ-साथ हल्के गर्मी (55 ° C / 131 ° F) के लिए अतिसंवेदनशील है। स्थानिक क्षेत्रों में इस बीमारी को मुख्य रूप से टीकाकरण द्वारा रोका जा सकता है। जानवरों को अच्छी स्थिति में रखने के लिए प्रबंधन नैदानिक संकेतों और जीव के संचरण के जोखिम को कम कर सकता है। स्थानिक क्षेत्रों में टीकाकरण नियमित रूप से किया जाना चाहिए। पी मल्टीसीडा के कई सीरोटाइप में लोगों को संक्रमित करने की क्षमता है एचएस या एचएस जैसी बीमारी के संदिग्ध मामलों से निपटने के दौरान उचित सावधानी बरतनी चाहिए तभी हम अपने पशुओं की उचित देखभाल कर पाएंगे।

# नवजात बछड़े व बछियों की देखभाल कैसे करें

- अमित सिंह, संजीव कुमार सिंह एवम् रश्मि

डेयरी उत्पादन व्यवसाय का भविष्य बेहतरीन उत्पादित बछड़े व बछडियों पर निर्भर होता है, क्योंकि ये बछड़े व बछड़ियाँ भविष्य में झुण्ड से निकली अनुत्पादि पशुओं की जगह लेती हैं। पशुपालकों को यह नहीं भूलना चाहिए की आज की बछड़े व बछड़ियाँ कल की दुधारू गाय/भैंस एवम् सांड हैं। पर अक्सर यह देखा गया है कि पशुपालक जन्म के बाद गाय/भैस के बच्चों पर विशेष ध्यान नहीं देते हैं। विभिन्न शोध व सर्वेक्षणों से यह पाया गया है कि हमारे देश के ग्रामीण क्षेत्रों में बछड़े व बछडियों की मृत्यु दर अधिक है जिसका मुख्य कारण पशुपालकों द्वारा पशु के प्रसव से पहले, प्रसव के दौरान व जन्म के उपरांत बच्चों के उचित रख रखाव, पोषण व स्वास्थ्य पर पूरा ध्यान नहीं देना माना जा सकता है, जबकि नवजात बछड़े व बछड़ियों की देखभाल उनके जन्म से पूर्व ही आरम्भ हो जाती है ।

अतः नवजात-पशु-प्रबन्धन, पोषण व स्वास्थ्य से सम्बन्धित कुछ महत्वपूर्ण दिशा निर्देशों को सुचारू रूप से क्रियान्वित करने से डेरी व्यवसाय से जुड़े पशुपालक अपने नवजात बच्चों को बहुत हद तक मृत्यु के मुँह से बचा सकते हैं।

### प्रसव से पूर्व एवम् प्रसव के दौरान रख-रखावः

- बछड़े व बछड़ियों के उचित पोषण एवम् विकास के लिए ग्याभिन पशु को ब्याने से 2-3 महीने पहले से ही 1.5 से 2 किलो ग्राम दाने का मिश्रण देना चाहिए, ताकि कम शारीरिक भार के बच्चे पैदा नहीं होवें और प्रसव सम्बन्धी समस्याएँ जैसे जेर का देर से गिरना या नहीं गिरना, किटोसिस, ऊर्जा की हानि, दुग्ध उत्पादन मे कमी आदि नहीं होवें तथा ग्याभिन पशुओं का स्वास्थ्य भी ठीक रहे और ब्याने के बाद दूध का उत्पादन भी अधिक हो ।
- जिन ग्याभिन पशुओं के ब्याहने का समय नजदीक हो उन्हें बाड़े से अलग, ब्याहने वाले कक्ष में अथवा अलग स्थान पर रखना चाहिए।
- ब्याहने के लक्षण प्रदर्शित करने के पश्चात यदि पशु चार घण्टे या उससे अधिक समय से प्रसव के लिए जोर लगा रहा है और अंततः जोर लगाना बन्द कर दिया हो तो तुरन्त कुशल पशुचिकित्सक की सहायता लेनी चाहिए।
- ब्याहते समय पशु को दूर से देखना चाहिए, ताकि पशु किसी प्रकार की बाधा महसूस नहीं करे और उसका प्रसव बैठे रहने की स्थिति में हो, जिससे बच्चे को चोट लगने की सम्भावना कम हो जाती है यदि आवश्यकता हो तो पशु का ब्याहते समय मदद करनी चाहिए ।

### जन्म के बाद देख-भाल

- बछड़े के जन्म के तुरन्त बाद उसकी नाक और मुँह से श्लेष्मा झिल्ली हटा देना चाहिए, ताकि बच्चा अच्छी तरह से साँस ले सके ।
- यदि श्लेष्मा नाक के अन्दर होतो बच्चे के पिछले पैरों को पकड़ कर उल्टा लटका देना चाहिए ताकि श्लेष्मा निकल जाये ।
- यदि किसी कारणवस माँ बच्चे को नहीं चाटती है तो बच्चे को साफ सूती कपडे, बोरी या टाट के टुकड़े अथवा सूखे घास फूस जैसे पुआल, तुड़ी इत्यादि से अच्छी तरह से रगड़ कर साफ कर देना चाहिए।
- चाटने व कपड़े से साफ करने से बच्चे के शरीर का रक्त संचार एवम् श्वसन क्रिया रूप से चलने लगते हैं ।

### जन्म के बाद नवजात बछड़े व बछियों का पोषण

- डेयरी व्यवसाय का भविष्य बेहतर उत्पादित व स्वास्थ्य बछड़े व बछियों पर निर्भर होते हैं क्योंकि आज की बछड़ियाँ कल की गाय/भैंस हैं। डेयरी व्यवसाय की सफलता, बछड़ा व बछियों के उचित प्रबंधन व पोषण पर निर्भर करती है । बछड़ा व बछियों के स्वास्थ्य व पोषण के लिए उनकी माँ का पहला गाडा, पीला व स्तन ग्रंथियों का पहला स्राव जिसे खीस कहते है अतिआवश्यक है।

### खीस कब व कितना पिलाना चाहिए ?

- जन्म के आधे से एक घंटे के भीतर नवजात बच्चों को उसके भार के दसवे भाग की दर से लगभग 2-3 किलोग्राम खीस दिन मे 2-3 बार पिलाना चाहिए क्योंकि खीस में रोगों से लड़ने के लिए प्रतिरोधक तत्व (इम्मुनोग्लोबिलिंस/ एंटीबॉडी) होते हैं जोकि बच्चों को विभिन्न रोगों से बचाते हैं। साथ ही यह अत्यधिक पोषक तत्वों से भी भरपूर होता है।

### खीस जन्म के आधे से एक घण्टे के भीतर ही क्यों पिलाना चाहिए

- क्योंकि गर्भावस्था के दौरान, ये एण्टीबॉडी (इम्मुनिग्लोबुलिंस) माँ से बच्चे में स्थानातरित नहीं हो पाती क्योंकि गाय/भैसों का जेर (प्लेसेंटा) इन एण्टीबॉडी को बच्चे के शरीर में पास नहीं होने देता है इसलिए नवजात बछड़े पूरी तरह से खीस पर निर्भर रहते हैं।
- जन्म के समय नवजात बछड़े व बछियों की आँत अपरिपक्व होती है और जन्म के आधे से एक घंटे के भीतर पाचक एन्जयमों का स्राव भी कम होता है जिसके कारण खीस में पाये जाने वाली एण्टी बॉडी

को अधिक मात्रा में अवशोषित करने की क्षमता रखती है।

- खीस देरी से पिलाने पर उनकी आँतें एण्टीबोडिज को अवशोषित करने की क्षमता खो देती हैं इसके अलावा पाचन एन्जयमों का स्राव भी अधिक हो जाता है जिसके कारण एण्टीबॉडी पूरी तरह से अवशोषित नहीं हो पाती हैं ।

- खीस एक तरल सोने के नाम से भी जाना जाता है क्योंकि इसमे मातृत एंटी बॉडी होती हैं जोकि नवजात शिशु को विभिन्न रोगों से रक्षा करती हैं ।

- खीस रेचक (दस्तावर) प्रवृति का होता है जिसके पिलाने से आहार नल में जमा मल (जोकि माँ के गर्भ के समय बच्चे के पेट में जमा हो जाता है) जल्दी ही बाहर निकल जाता है जिसे हम प्रथम मल या मेकोंनियम कहते हैं।

- सामान्यत: यह पिलाने के 3-4 घंटे के अन्दर बाहर आ जाता है यदि किसी कारणवश बाहर नहीं आये तो बछड़े को एक चम्मच अरण्डी का तेल पिलाना चाहिए।

### नाभि नाल को काटना

- जन्म के बाद नवजात बच्चे की नाभि पर ध्यान देना बहुत ही आवश्यक है क्योंकि अधिकांश रोग नाभि के माध्यम से ही शरीर मे प्रवेश करते हैं जोकि एक गंभीर परेशानी का कारन बन सकती है। यहाँ तक की बच्चे की मृत्यु भी हो सकती है इसलिए इससे बचने के लिए जन्म के बाद बछड़े की नाभि नाल को साफ करके नाल को शरीर से 2.5 सेंमी की दूरी पर धागे से गांठ बांध देनी चाहिए और बांधे हुऐ स्थान से 1 सेंमी नीचे से काट कर टिन्चर आयोडीन का घोल अथवा अन्य एंटिबायोटिक लगाना चाहिए।

- यदि नाभि मे संक्रमण की शुरूआत हो तो घाव पर इंडियन हर्बल द्वारा निर्मित स्किनहील स्प्रे को अच्छी प्रकार लगायें तथा रोजाना कम से कम दो बार घाव के ठीक होने तक स्प्रे करना चाहिए।

### नवजात बछड़े व बछियों में होने वाले रोग

नवजात बछड़े व बछडियों के जन्म के बाद उनके शरीर में रोग प्रतिरोधक क्षमता नहीं होती है और उनमें किसी भी प्रकार के रोग होने की संभावना होती है, क्योंकि बच्चों के गर्भ के समय इम्मुनोग्लोबुलिन (एंटीबॉडी) माँ से बच्चे में प्लेसेंटा (जेर) के द्वारा स्थानांतरित नहीं हो पाती, इसलिए जन्म के बाद बच्चे पूरी तरह से माँ के पहले गाढ़ा व पीला दूध जिसे हम खीस कहते हैं पर ही निर्भर रहते हैं। क्योंकि माँ का पहला गाढ़ा पीला दूध पोषक तत्वों से भरपूर व रोगों से लड़ने की क्षमता (इम्मुनोग्लोबुलिन एंटीबॉडी) रखता है। नवजात बछड़े व बछडियों के रोगों में से कुछ रोगों के कारण एवम् उनसे बचाव व उपाय निम्नलिखित अनुसार है

- **नाभि सड़न (नवल इल)**- यह रोग हाल ही में पैदा हुए बच्चों में उचित देखभाल न करने के कारण होता है। नाभि के चारों ओर सुजन आ जाती है एवम् अधिक सूजन आ जाने के कारण बच्चे दूध नहीं पी पाते हैं।

- **निमोनिया**- यह रोग प्राय: मौसम में अचानक परिवर्तन के कारण होता है जैसे ठंड एवम् गर्मी या गन्दे व नमी युक्त स्थान पर रहने पर होता है। इस रोग में बच्चे ठंड महसूस करते हैं। बुखार आ जाता है। नवजात बच्चा खांसने लगता है।

- **दस्त (सद दस्त)**- यह रोग 2 से 5 दिन की उम्र वाले बच्चों में कांली फॉर्म समूह के जीवाणुओं के संक्रमण के कारण होता है प्राय: यह सही समय पर खीस नहीं पिलाये जाने पर होता है। इस रोग के आरम्भ में तेज पतले दस्त, मल का रंग हल्का पीला या सफेद झागदार एवम् दुर्गन्धि युक्त होता है। तेज बुखार आ जाता है। कभी कभी दस्तों के साथ खून भी आता है और बच्चा कमजोर व आँखे अन्दर की ओर बदने लगती है।

- **अन्त: परजीवी**- दूध पिने वाले बछड़ों के पेट में अन्त: परजीवी जैसे- गोलकृमि आदि का प्रकोप देखने को मिलता है। बच्चों को यह गन्दे पानी तथा दूषित चारे से होंता है। बछड़ा सुस्त, शरीर भार में गिरावट आती है। दस्तों का लगना व आँखों में चिपचिपापन आना आदि लक्षण है।

सर्दी के मौसम में पशुओं को खासकर बछड़े-बछड़ियों (कटडे-कटडियों) को ठंड लगने से हर तरह का बचाव करना आवश्यक है। तेज बर्फीली हवा, धुंध तथा कड़ाके की सर्दी में छोटे बच्चों को निमोनिया आदि बीमारियाँ हो जाती हैं। इसलिए इनके आवास के खुले भाग में रात के समय बोरी, तिरपाल या कम से कम ज्वार-बाजरे के डंठलों का टटा (टाट) बनाकर टाँगना चाहिए ताकि घर के अन्दर बँधे पशुओं के बच्चों को सीधी ठण्डी हवा से बचाया जा सके। बच्चों के आवास का फर्श सुखा होना चाहिए ताकि रात्रि में सीधी ठण्ड बच्चों को न लगे और फर्श पर गेंहू का भूसा या चावल की पूआल डालकर भी सर्दी कम कर सकते हैं। पशुओं को अधिक ठण्डा या गर्म पानी नहीं पिलाना चाहिए। दिन के समय बच्चों को धूप में बांधना चाहिए ताकि बच्चे को धूप से गरमाहट मिल सके। बच्चों के आवास के पर्दो को दिन के समय हटा दें तथा गिले बिछावन को हटाकर साफ कर दें ताकि रोशनी व हवा का आवागमन हो सके व आवास स्वच्छ व सूखी हो सके तथा शाम को सूर्यास्त के बाद बच्चों को घर के अन्दर बांध देना चाहिए। अत: पशुपालकों को यह ध्यान रखना चाहिए कि एक डेयरी इकाई का नाभिक बीज एक बछड़ा/बछड़ी होती है।

# सूकर पालन : पशुपालकों के लिए लाभकारी व्यवस्था

- पारूल, अदित जैन एवम् बरखा शर्मा

सूकर पालन व्यवसाय कम समय में अधिक आय अर्जित करने वाला एक अच्छा व्यवसाय है। सम्पूर्ण भारत एवम् उत्तर प्रदेश में भी सूकर पालन किया जाता है। उत्तर पूर्वी राज्यों में सूकर पालन बहुतायत से किया जाता है। तथा देशी नस्ल के सूकर पाले जाते है। परन्तु क्रास ब्रीडिंग की प्रकिया द्वारा देशी नस्लों को भी क्रास ब्रीड प्रजाति में बदल कर देशी नस्लों में और सुधार किया जा रहा है। अच्छे नस्ल का सूकर अच्छे पोषण एवम् प्रबधन से मात्र 5-6 माह की आयु में ही 70 से 80 किलोग्राम शारीरिक भार प्राप्त कर लेते है। सूकर एक ऐसा पशु है जो कि अपौष्टिक आहार तथा कृषि जन्य जैव उत्पाद को खाकर प्रोटीन युक्त मांस में परिवर्तन कर देता है। सूकर के मांस उत्पादन एवम् माँग दोनों में ही वृद्धि हो रही है। जो कि सूकर पालन व्यवसाय के लिए अच्छा संकेत है। विदेशों में भी इसका निर्यात किया जाता है। सूकर पालन कम लागत में अधिक मुनाफा कमाने के लिए एक अच्छा व्यवसाय है।

**सूकर पालन व्यवसाय हेतु मुख्य बिन्दुः-**

1- सस्ती आवासीय व्यवस्था

2- सन्तुलित पशुआहार

3- उत्तम नस्लों का चयन

4- सूकर बाजारों की जानकारी

5- रोग नियंत्रण एवम् प्रबंधन

6- न्यूनतम उत्पादन लागत

**1. आवासीय व्यवस्था :-**

ग्रामीण परिवेश में समुचित स्थान होने की वजह से कम लागत में पक्के आवास का निर्माण हो जाता है। विभिन्न आयु एवम् शारीरिक भार के पशुओं के आवास हेतू 7-40 वर्ग फीट जगह की आवश्यकता होती है। इसके अतिरिक्त नवजात सूकर एवम् मादा के लिए शेड तथा सूकर बाड़ा का निर्माण चरही के साथ किया जाता है। आवास हवादार, प्रकाश युक्त एवम् समुचित जल व्यवस्या वाला होना चाहिए।

**2. आहार व्यवस्था :-**

सूकर के आहार हेतु 250 ग्राम से 2.5 किलोग्राम पौष्टिक आहार प्रति पशु जो कि विभिन्न आयु एवम् शारीरिक भार के हिसाब से दिया जाता है। दूध देने वाली सुकरियाँ को 500 ग्राम दाना प्रति पशु प्रतिदिन जो कि 60 दिन तक दिया जाता है। इसके अतिरिक्त हरा पौष्टिक चारा, बरसीम, लूर्सन, गोभी के पत्ते, हरी सब्जियाँ के बाजार से बची हुई सब्जियाँ होटल से बचा हुआ खाना इत्यादि भी दे सकते है। सूकर पालन में पोषण सम्बन्धी समस्या बहुत कम होती है।

**3. उत्तम नस्ल का चयन :-**

मुख्यतः क्रास ब्रीड प्रजातियां जैसे लार्ज व्हाइट यार्कशायर एवम् मिडिल व्हाइट यार्कशायर एवम् लैंड रेश सूकर पालन में प्रयोग की जाती है। इसके अतिरिक्त देशी सूकरों का पालन भी किया जाता है।

**4. प्रजननः-** मादा सूकर व्यस्क होते ही गर्मी में आ जाती है तथा नर सूकर के साथ लाकर गर्भाधान कराया जाता है। गर्भित पशु का गर्भकाल 114 से 118 दिनों तक होता है। गर्भित मादा पशुओं को अलग बाड़े में रखा जाता है तथा समुचित देखभाल बच्चा देने के समय तक की जाती है। एक मादा पशु 8-12 बच्चे एक बार में देते है। बच्चों को 30 से 60 दिन तक मां के दूध का सेवन कराया जाता है। तथा इसके बाद में बच्चों को अलग कर शिशु आहार दिया जाता है।

**5. रोग नियत्रंण एवम् प्रबधनः-**

सूकर में मुख्यतः जो सक्रांमक रोग होते है। उसका प्रतिरक्षात्मक टीकाकरण पशु चिकित्सक द्वारा किया जाता है। इसके अतिरिक्त समय समय पर कीड़ो को मारने की दवा दी जाती है।

**6. न्यूनतम उत्पादन लागतः-**

सूकर पालन व्यवसाय को 1 यूनिट (1नर तथा 5 मादा सूकरियों) से शुरू कर सकते हैं। जिसके लिए बैंक ऋण भी उपलब्ध कराती है। सूकर पालन में आवासीय एवम् आहार व्यवस्था पर कम लागत आती है। तथा एक बार मादा सूकर के गर्भित होने के बाद मात्र चार महीने में लगभग 10 नये सूकर और आ जाते हैं। इस प्रकार एक यूनिट की पाँच मादा सूकर लगभग 50 बच्चे को जन्म देती है जो कि चार महीने में 70-80 किलोग्राम के होकर मांस बिक्री हेतू तैयार हो जाते हैं।

अतः इस प्रकार सूकरपालन व्यवसाय को अपनाकर कम समय एवम् कम लागत से काफी अधिक मुनाफा कमाया जा सकता है।

# गोवंशी पशुओं में सींग का कैंसर

- गुलशन कुमार

सींग के कैंसर को सींग का अमेड़ी रोग भी कहते हैं। यह सींग के आधार पर होने वाला एक घातक अर्बुद/कैंसर है। यह बहुधा बड़े सींग वाले वयस्क गोवंशीय पशुओं में पाया जाता है। मादा गोवंश की अपेक्षा बैल (बधियाकृत नर वयस्क) इस रोग से अधिक प्रभावित होते हैं तथा कभी-कभी साँड़ भी प्रभावित होते हैं। सींग पर लगातार किसी प्रकार की रगड़ या प्रदाह के कारण सींग के अर्बुद का होना पाया गया है। सींग के आधार पर रस्सी की रगड़, चोट लगने, सूर्य की हानिकारक किरणों के लगातार सम्पर्क में रहने, वार्निश, इनामेल पेण्ट, हॉर्मोनों के असन्तुलन (जैसा बधियाकृत नर वयस्कों में सम्भावित है) अथवा अनुवांशिक कारणों से गोवंश में सींग के कैंसर हो सकता है।

सींग के इस रोग से पीड़ित पशु सींग के प्रति असहज हो जाता है। इससे छुटकारा पाने के लिये वह सिर को झटकता है तथा सींग को पेड़ के तने, खूँटे, दीवार, या अपने पिछले पैरों से रगड़ कर खुजलाता है। इससे स्थिति और बिगड़ने लगती है। रोगग्रस्त सींग का आधार कमजोर होता जाता है तथा सींग धीरे-धीरे नीचे की ओर झुकने लगता है। इस रोग के प्रभाव से साइनस में रक्तस्त्राव व मवाद उत्पन्न होता है, पशु को छींक आती है और उसी तरफ के नथुने से कभी-कभी रक्तरंजित मवाद बहने लगता है। सींग का आधार कमजोर होने से सींग हिलने लगता है। सींग के इस भाग में शोथ के कारण सूजन हो जाती है एवम् छूने पर गर्म प्रतीत होता है। कालान्तर में सूजन वाले स्थान पर घाव हो जाता है व सींग स्वतः टूट जाता है। देखभाल के अभाव में खुले घाव में मक्खियाँ अण्डे दे देती हैं जिनसे कीड़े पड़ जाते हैं।

इस रोग से बचाव हेतु पशुओं को सीधी धूप से बचाना चाहिये, पशु को सींग से नहीं बाँधना चाहिए तथा ऐसे प्रत्येक उपक्रम से बचना चाहिये जिससे सींग के मूल में लगातार रगड़ लगती हो तथा खून का संचार भी बाधित होता हो। वार्निश व इनामेल पेण्ट में हानिकारक रसायन होते हैं जो अर्बुद के कारक हैं। अतः इनका प्रयोग सींगों पर नहीं करना चाहिये। इसी प्रकार सुन्दर बनाने के लिये सींगों का छीलना, तराशना तथा रगड़ना, हानिकारक होता है। ऐसे साँड़ों से सन्तति प्राप्त करना बन्द कर देना चाहिये जिनकी सन्तति में यह रोग निरन्तर पाया जा रहा हो।

यद्यपि इस रोग के उपचार हेतु रोधक टीकों का प्रयोग किया गया है जिनका प्रभाव सन्तोषप्रद नहीं है तथापि शल्य चिकित्सा द्वारा इस रोग का प्रारम्भिक अवस्था में उपचार करके पशु को इतना अवश्य ठीक किया जा सकता है कि पशु का उपयोगी जीवनकाल बढ़ जाय। प्रारम्भिक अवस्था में शल्य चिकित्सा के अच्छे परिणाम मिलते हैं। शल्य चिकित्सा में रोगग्रस्त सींग व ऊतकों को काटकर हटा दिया जाता है।

**प्रधान सम्पादक की कलम से....**

प्रिय पशुपालक भाइयों,

पशुधन पत्रिका के त्रयोदश अंक (प्रथम संस्करण) को लेकर आपके सम्मुख उपस्थित होते हुये मुझे गौरव की अनुभूति हो रही है। भारतवर्ष में पशुपालक भाई अपनी आय हेतु पशुपालन व कुक्कुट पालन पर निर्भर होते हैं तथा इसी को दृष्टिगत रखते हुये वर्तमान पत्रिका पशुपालकों के आर्थिक लाभ को बढ़ाने हेतु पशुओं के पालन-पोषण व प्रबन्धन की महत्ता पर विशेष जानकारियों से सुसज्जित है।

पशुओं में होने चाले गलघोंटू रोग, पशुओं के साथ कार्य करने वाले लोगों में हो सकने वाले प्राणिरुजा रोग व उनकी रोकथाम, जेर ना निकलने की स्थिति से बचाव व उस स्थिति में पशु प्रबन्धन, नवजात बछड़े-बछड़ियों की देखभाल के उपाय, दुधारू पशुओं के पोषण में सन्तुलित आहार की भूमिका, हरे चारे वह औषधि के रूप में सहजन की खेती, भ्रूण प्रत्यारोपण व लिंग चयनित वीर्य जैसी आधुनिक तकनीकों को इस बार इस पत्रिका में संकलित किया गया है।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि हम सभी के सम्मिलित प्रयासों के परिणामस्वरुप पशुधन पत्रिका का वर्तमान अंक आप सभी पशुपालक भाइयों की आय वृद्धि व विकास में कहीं न कहीं अवश्य सहायक होगा तथा इसके लिये मैं अपने संपादक मण्डल व सभी लेखकों के साथ-साथ माननीय कुलपति महोदय का धन्यवाद करना चाहूँगा।

शुभेच्छाओं सहित

आपका

**सर्वजीत यादव**

निदेशक प्रसार

प्रसार निदेशालय एवं पशु चिकित्सा संकाय
पशु ज्ञान चौपाल

B-28

Refresher Training Programme
On
"Capacity Building of Veterinary Officers for effective delivery of Critical Services"
U.P. Pt. Deen Dayal Upadhyaya Pashu Chikitsa Vigyan
VishwaVidyalaya Evam Go-Anusandhan Sansthan, Mathura - 281001 (U.P.)
(17/12/2018 to 19/12/2018)
Uttar Pradesh Veterinary Council, Lucknow

Refresher Training Programme
On
"Capacity Building of Veterinary Officers for effective delivery of Critical Services"
U.P. Pt. Deen Dayal Upadhyaya Pashu Chikitsa Vigyan
VishwaVidyalaya Evam Go-Anusandhan Sansthan, Mathura - 281001 (U.P.)
(09/01/2019 to 11/01/2019)
Uttar Pradesh Veterinary Council, Lucknow

Refresher Training Programme
On
"Capacity Building of Veterinary Officers for effective delivery of Critical Services"
U.P. Pt. Deen Dayal Upadhyaya Pashu Chikitsa Vigyan
VishwaVidyalaya Evam Go-Anusandhan Sansthan, Mathura - 281001 (U.P.)
(19/02/2019 to 21/02/2019)
Uttar Pradesh Veterinary Council, Lucknow

प्रसार निदेशालय एवं पशु चिकित्सा संकाय
उ0प्र0 पंडित दीनदयाल उपाध्याय पशु चिकित्सा विज्ञान विश्वविद्यालय एवं गौ-अनुसंधान संस्थान (दुवासु), मथुरा
प्रसार निदेशालय
पशु ज्ञान चौपाल
राष्ट्रीय कृषि विकास योजना के अन्तर्गत

Five days Training Programme
On
"Improved production and management of Small ruminants"
(04/02/2019 to 08/02/2019)